वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति एवं विकास
Origin & Development of Varna

Dr. Manoj Kumar
Assistant Professor (Guest)
Dept. of A.I.H. & Archaeology,
Patna University, Patna-800005
Email- dr.manojaihcbhu@gmail.com
Mobile- 7007236005
P.G. / M.A. IVth Semester,
Paper - Ancient Indian Society (E.C.)
Dept. of A.I.H. & Archaeology. Patna University, Patna

वर्ण शब्द संस्कृत की वृ धातु से निकला है जिसका शाब्दिक अर्थ है वरन करना या चुनना । इस प्रकार इससे तात्पर्य वृत्ति अथवा व्यवसाय चयन से है । एक अन्य अर्थ रंग के लिए भी वर्ण शब्द का प्रयोग कही कही मिलता है। प्राचीन भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान था। वर्ण-व्यवस्था का उल्लेख वैदिक ग्रन्थों में मिलता है। ऋग्वेद में समाज में दो वर्गों का वर्णन है- आर्य वर्ण तथा दास वर्ण। इन दोनों वर्णों का विभाजन इनके कार्य तथा प्रकृति पर आधारित था। विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद में 'दास' अनार्यो को कहा गया है। पुरुष सूक्त के अतिरिक्त ऋग्वेद में चार वर्णों का उल्लेख नहीं मिलता है। पुरुष सूक्त का रचना-काल ऋग्वेद की रचना-काल के बाद का माना जाता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि ऋग्वैदिक काल में समाज चार वर्णों में विभक्त नहीं था। ऋग्वेद में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय का उल्लेख मिलता है, किन्तु वैश्य एवं शुद्र का उल्लेख मात्र पुरुष सूक्त में मिलता है।

वैदिककालीन वर्ण-व्यवस्था- ऋग्वैदिक काल में भारतीय अनेक जन में विभक्त थे। ऋग्वेद में प्रयुक्त 'पंचजना' तथा 'पंवकृष्टय: ' शब्दों से ज्ञात होता है कि उस समय पाँच जन प्रमुख थे। ये पंचजन थे- अनु, द्रुह्यु, यदु, तुर्वशु तथा पुरु। प्रत्येक जन में प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक स्थिति लगभग एक समान थी और सभी को 'विश' अर्थात् जनता का अंग माना जाता था। ये जन मुख्य रूप से आर्यों के थे। आर्य जनपदों में समाज के दो भाग थे-आर्य एवं दास। अनार्यो के लिए वेदों में 'कृष्णत्वक्', 'कृष्णगर्भ', 'अनास' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है जिससे यह पता चलता है कि अनार्य साँवले अथवा काले रंग के होते थे जबकि आर्य अपेक्षाकृत गोरे होते थे। आर्यों तथा अनार्यों में भाषा की भिन्नता थी, जिसके कारण वेदों में अनार्यों को अस्पष्टभाषी कहा गया है । आर्यों को अच्छे गुणों, अच्छे चरित्र तथा अच्छे स्वभाव का कहा गया है जबकि अनार्यों को निम्न गुणों वाला, निकृष्ट स्वभाव का तथा दुष्चरित्र कहा गया है। पुरुष सूक्त में प्रथम बार चार वर्णों का उल्लेख मिलता है। पुरुष सूक्त के अनुसार-"देवताओं ने आदि पुरुष के चार भाग किए, जिनमें ब्राह्मण उसके मुख से, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जंघा से तथा शूद्र उसके पैरों से जन्मे **"पुरुष एवेदम् सर्वम् यद्भूतं यच्च भाव्यम्"** - ब्राह्मणों का कार्य था कि वे मनुष्य को उचित शिक्षा प्रदान करें। क्षत्रिय का कार्य था कि वह अपनी शारीरिक शक्ति का प्रयोग करते हुए अपने लोगों की शत्रुओं से रक्षा करें । वैश्व का कार्य था आय्यों तथा अनार्यों के लिए भोजन जुटाना। शूद्र का कार्य था कि वह शेष तीनों वर्णों की सेवा करे।

वैदिक काल में समाज चार वर्णों में विभक्त हो जाने पर भी व्यवसाय के आधार पर वर्ण का निर्धारण होता था । व्यवसाय का निर्धारण जन्म से नहीं होता था अपितु व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता रहती थी। ऋग्वेद के नवें मण्डल की एक ऋचा में एक व्यक्ति का कथन है कि- "मैं कवि हैं। मेरे पिता एक वैद्य थे । मेरी माता आटा पिसती थी। हम सभी धन और करते हैं।" ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों का विश् (वैश्य) लोगों की अपेक्षा अधिक सम्मान था किन्तु ये दोनों वर्ण भी जन्म से नहीं अपितु कार्य से निर्धारित होते थे अतः कोई भी पशु की कामना मनुष्य विद्या ग्रहण करके ब्राह्मण बन सकता था अथवा युद्ध-कौशल प्राप्त करके क्षत्रिय बन सकता था।

उत्तर वैदिककालीन वर्ण-व्यवस्था- याज्ञिक कर्मकाण्ड बढ़ने के साथ-साथ वर्ण-व्यवस्था में भी परिवर्तन आता गया। उत्तर वैदिककाल में यज्ञों की क्रिया जटिल हो गई, जिसने समाज में ब्राह्मणों का महत्त्व बढ़ा दिया। वनों एवं आश्रमों में निवास करने वाले ब्रह्मवादियों तथा तत्त्वचिन्तकों का भी ब्राह्मणों के वर्ग में समावेश हो गया। इस प्रकार यज्ञिकों एवं मुनियों के रूप में ब्राह्मणों का वर्चस्व बढ़ गया।

यजुर्वेद एवं अथर्ववेद के मन्त्रों में चारों वर्णों का उल्लेख मिलता है । ब्राह्मण वर्ण का वर्चस्व बढने पर भी वर्ण-व्यवस्था विद्या पर आधारित थी । जन्म के आधार पर वर्ण-विभाजन प्रारम्भ नहीं हुआ था। शतपथ ब्राह्मण में भी उल्लेख है कि - ' व्यक्ति ज्ञान से ब्राह्मण बनता है, जन्म से नहीं ।' शतपथ ब्राह्मण में ही एक अन्य स्थान पर उल्लेख है कि- "जो मनुष्य यज्ञ करता है, वह मानो प्रथम ब्राह्मण बन कर ऐसा करता है।"

वैदिक कथाओं के अनुसार विश्वामित्र का जन्म क्षत्रिय वर्ण में हुआ था। राजा सुदास ने ब्राह्मण ऋषि वशिष्ठ के स्थान पर विश्वामित्र को अपना पुरोहित बनाया था। उत्तर वैदिककाल में ब्राह्मण आचार्य ऐसे विद्यार्थियों को भी शिक्षा देते थे जिनके कुल, गोत्र के बारे में जानकारी नहीं रहती थी। इस प्रकार जाबाल के कुल-गोत्र का पता न आचार्य गौतम ने जाबाल को अपने शिष्य के रूप में स्वीकार किया।

वाजसनेयी संहिता तथा काठक संहिता में क्षत्रियों को ब्राह्मणों से श्रेष्ठ बताया गया है। शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है कि ब्राह्मण राजा का अनुगमन करता है। फिर भी सामान्यत: ब्राह्मण क्षत्रियों तथा वैश्यों से अधिक महत्त्वपूर्ण माने जाते थे। शूद्र इन तीनों वर्णों से नीचे माने जाते थे ।

सूत्र-ग्रन्थों के काल में वर्ण-व्यवस्था- सूत्र-ग्रन्थों का रचना-काल ब्राह्मण-ग्रन्थों के बाद का माना जाता है। सूत्र-ग्रन्थ तीन हैं- श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र तथा धर्मसूत्र। सूत्र- ग्रन्थों के रचना-काल में वर्ण-व्यवस्था का और अधिक विकास हुआ। ब्राह्मणों को चारों वर्णों में श्रेष्ठ माना जाने लगा। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार-" राजा अन्य सबसे श्रेष्ठ होता है किन्तु ब्राह्मण उससे भी श्रेष्ठ होते हैं। ब्राह्मणों का सत्कार करना राजा का कर्त्तव्य है। यदि कोई ब्राह्मण आ रहा हो तो राजा को उसके लिए मार्ग छोड़ देना चाहिए।"

बौधायन धर्मसुत्र में आपातस्थिति में ब्राह्मण भी क्षत्रियों की भाँति शस्त्र धारण कर सकते थे। आवश्यकता पड़ने पर वे वैश्यों का कार्य भी कर सकते थे। कात्यायन ने श्रौतसूत्र में लिखा है कि-" वैश्य और क्षत्रिय भी दीक्षित होने के बाद ब्राह्मण कहला सकते थे।" इससे स्पष्ट होता है कि समाज में ब्राह्मण वर्ण का वर्चस्व बढने पर भी वर्ण-विभाजन जन्म नहीं, कर्म पर आधारित था। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार-"हीन वर्ण का व्यक्ति भी अपने धर्म का पालन करने पर उत्तरोत्तर जन्मों में उच्चतर वर्ण में जन्म लेता है।"

क्षत्रियों का स्थान ब्राह्मण वर्ण के बाद था। सूत्र-ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर क्षत्रिय एवं ब्राह्मण के परस्पर सहयोग का उल्लेख मिलता है। क्षत्रिय शत्रुओं से रक्षा करते थे। वैश्य पशुपालन, कृषि, महाजनी तथा वाणिज्यिक कार्य करते थे। संकट के समय वैश्य भी शस्त्र धारण कर सकते थे।

सबसे उपेक्षित दशा शूद्रों की थी। उनकी स्थिति दासों के समान थी। जहाँ ब्राह्मण वर्ग को दण्ड पाने से छूट थी, वहीं शूद्रों के लिए कठोर से कठोर दण्ड दिए जाते थे।

महाकाव्य-काल में वर्ण-व्यवस्था - आर्यों के दो प्रमुख महाकाव्य थे-रामायण और महाभारत। महाकाव्य-काल में वर्ण-व्यवस्था विकृत हो चली थी। समाज में ब्राह्मण वर्ण का वर्चस्व बढ़ गया था तथा क्षत्रियों को बाहु-कौशल का प्रतीक माना जाने लगा था। ब्राह्मण वर्ण सर्वोत्कृष्ट माना जाता था। उसके बाद क्षत्रिय तथा वैश्य आते थे। शूद्रों की स्थिति निम्न थी। शुद्रों को यज्ञ करने अथवा दान देने का अधिकार नहीं था यज्ञ करने अथवा दान देने पर उन्हें दण्डित किया जाता था। पुरुष अपने वर्ण से उच्च वर्ण की स्त्री से विवाह नहीं कर सकते थे किन्तु अपने वर्ण से निम्न वर्ण की स्त्री को पत्नी बना सकते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्यों का शुद्र स्त्री से विवाह करना उचित नहीं माना जाता था। महाभारत में कई स्थानों पर उल्लेख है कि अच्छे कर्म करने पर किसी भी वर्ण का व्यक्ति अगले जन्म में उच्च वर्ण में जन्म लेता है । महाभारत के 'अनुशासन पर्व' के अनुसार-"ब्राह्मणों को उनके आचरण के आधार पर ही ब्राह्मण कहा जा सकता है और यदि शूद्र सदाचारी हो तो उसे भी ब्राह्मणत्व प्राप्त हो सकता है।" महाकाव्यों में कई ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख है जिनके वर्ण का निर्धारण कर्म के आधार पर हुआ।

स्मृति-काल में वर्ण-व्यवस्था- स्मृति-ग्रन्थों से प्राचीन भारत में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था एवं उसमें उत्पन्न विकारों को जानने-समझने में बहुत सहायता मिलती है। मनुस्मृति में समाज के दो वर्ग मिलते हैं-आर्य तथा अनार्य । अनार्यो को दस्यु तथा म्लेच्छ कहा गया है। आर्य भी दो भाग में विभक्त थे-पहले भाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य सम्मिलित थे तथा दूसरे भाग में शूद्र थे। ब्राह्मणों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। वे अध्यापक, पुरोहित, न्यायाधीश, निर्धारक तथा मन्त्रियों का काम करते थे। कुकर्म में लिप्त हो जाने पर ब्राह्मण निन्दा का भागी बनता था किन्तु उसे दण्डित करने का प्रावधान नहीं था। ब्राह्मण शूद्र कन्या से विवाह कर सकते थे। क्षत्रियों का मुख्य कर्म युद्ध करना तथा देश की रक्षा करना था। वैश्यों का कार्य कृषि, व्यापार, वाणिज्य तथा पशुपालन था । वे व्यापार करने के लिए समुद्री यात्रा पर भी जाते थे शुद्रों को सबसे निम्न वर्ण माना जाता था उनका कर्त्तव्य ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों की सेवा करना था। कूड़ा-कर्कट तथा शव उठाना भी शद्रों का काम था। उन्हें संस्कार करने की अनुमति नहीं थी किन्तु वे श्राद्ध कर सकते थे । मनुस्मृति में शद्रों के अतिरिक्त दासों का भी उल्लेख मिलता है। ये वर्णाश्रम के अन्तर्गत नहीं आते थे।

बौद्ध तथा जैन काल में वर्ण-व्यवस्था- बौद्धकाल में वर्ण-व्यवस्था में परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया है। बुद्ध ने घोषणा की कि क्षत्रिय उच्चतर है जबकि ब्राह्मण उससे निम्न हैं। 'वासेट्ट सुत्त ' के अनुसार उच्चता का आधार ज्ञान है, जन्म नहीं। फिर भी बुद्ध के काल तक वर्ण- व्यवस्था में विकार उत्पन्न हो चुका था । बुद्ध का कहना था कि जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है और न कोई चाण्डाल। कर्म के आधार पर किसी को ब्राह्मण अथवा चाण्डाल कहना उचित है। बुद्ध का यह भी मानना था कि-"जो पुण्य-कार्य करते हैं वे सभी स्वर्ग के अधिकारी है ब्राह्मण मात्र नहीं।" बौद्ध साहित्य में क्षत्रियों के 'व्रात्य ' होने का उल्लेख मिलता है। इस काल तक आयों एवं अनार्यों के संसर्ग से जन्म लेने वाले क्षत्रिय समाज में आर्य क्षत्रियों की भाँति स्थान पा चुके थे। वैश्यों में भी विविधता आ चुकी थी। वैश्य वर्ण धनिकों तथा मध्यमवर्गियों के रूप में बँट चुका था। धनिक वैश्य ' श्रेष्ठि' तथा 'सार्थवाह' कहलाते थे मध्यमवर्गीय वैश्य सामान्य व्यापारी एवं छोटे व्यवसायियों के रूप में थे।

बौद्ध साहित्य में शूद्रों का जो वर्णन मिलता है वह पूर्ववर्ती वर्णन से भिन्न है। बौद्ध साहित्य में वर्णित शूद्रों की दशा दासों की भाँति अस्पृश्य नहीं है। शिल्पी, नट ग्वाले, घसियारे, सँपेरे, नर्तक, चाण्डाल, निषाद, जुलाहे, बढ़ई, मछुवारे, नाई आदि सभी की गणना शूद्रों में की गई है।

जैन साहित्य से पता चलता है कि चौबीसवें तीर्थकर महावीर के समय तक वर्ण-व्यवस्था में बहुत विकृति आ चुकी थी। महावीर ने भी वर्ण का आधार जन्म को न मानते हुए कर्म को माना। जैन विचारों में भी अध्ययन एवं ज्ञान को प्रधानता दी गई। 'प्राणिमात्र' के प्रति चिन्तन जैन दर्शन का आधार था। जैन-ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि किसी भी वर्ण का मनुष्य दीक्षा लेकर मुनित्व प्राप्त कर सकता था किन्तु उसमें ज्ञान के प्रति जिज्ञासा होना अनिवार्य था।

मौर्यकालीन वर्ण-व्यवस्था- मौर्यकाल में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था के बारे में दो स्त्रोतों से सर्वाधिक जानकारी मिलती है- कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' तथा मेगस्थनीज़ के यात्रा-वृत्तान्त । ये दोनों स्त्रोत तत्कालीन सामाजिक स्वरूप तथा वर्ण-व्यवस्था की प्रामाणिकता के साथ महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं।

(1.) **अर्थशास्त्र-** कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में मौर्यकालीन समाज का वर्णन करते हुए तत्कालीन वर्ण-व्यवस्था पर समुचित प्रकाश डाला है। मौर्यकालीन समाज चार वर्णों में बँटा हुआ था-ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, एवं शूद्र । 'अर्थशास्त्र' के अनुसार ब्राह्मण का स्वधर्म (कार्य) अध्ययन, अध्यापन, यजन (यज्ञ करना), याजन (यज्ञ कराना), दान देना तथा प्रतिग्रह (दान लेना) था । क्षत्रिय का स्वधर्म अध्ययन, यजन, दान देना, शस्त्र-संचालन द्वारा आजीविका प्राप्त करना तथा भूत रक्षण (प्राणियों की रक्षा करना) था। वैश्य का स्वधर्म अध्ययन, यजन, दान देना, कृषि, पशुपालन तथा वाणिज्य व्यापार था। शूद्रों का स्वधर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की सेवा करना, शिल्पी का कार्य करना, पशुपालन में सेवा-कार्य करना तथा नट आदि का कार्य करना था। वैश्यों के सहायक के रूप में अथवा स्वतन्त्र रूप से भी शूद्र कृषि, पशुपालन तथा व्यापार किया करते थे। शिल्प को मुख्य रूप से शूद्रों का ही कार्य माना जाता था। सैनिक सेवा मुख्य रूप से क्षत्रियों का कार्य माना जाता था। किन्तु ब्राह्मणों, वैश्यों एवं शूद्रों की भी सेनाएँ हुआ करती थीं। क्षत्रिय सेना श्रेष्ठ मानी जाती थी। शुद्रों को अध्ययन एवं यजन का विधिवत् अधिकार नहीं था। किन्तु कुछ दशाओं में वे वेद का अध्ययन कर सकते थे तथा यज्ञ कर सकते थे। कौटिल्य के अनुसार-"यदि किसी ब्राह्मण को यह आदेश दिया जाए कि वह शूद्रों को पढ़ाए अथवा उनके यज्ञ कराए, किन्तु यदि वह इस आदेश का पालन नहीं करता तो उसे पदच्युत कर दिया जाना चाहिए।"

(2.) **मेगस्थनीज़ के यात्रा वृत्तान्त-**मेगस्थनीज यूनानी यात्री था। उसने मौर्यकाल में भारत का भ्रमण किया था । मेगस्थनीज़ के यात्रा-वृत्तान्तों में स्पष्ट रूप से चार वर्णों का उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु तत्कालीन समाज तथा जातियों का वर्णन इस तथ्य को दर्शाता है कि मेगस्थनीज़ को भी भारत में चार वर्गों के अन्तर्गत बटा हुआ समाज मिला था । ये वर्ण थे-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र । मेगस्थनीज़ ने ब्राह्मण वर्ण को 'दार्शनिक' की संज्ञा दी है।

मौर्योत्तर-काल में वर्ण-व्यवस्था- मौर्योत्तर-काल में भी वर्ण-व्यवस्था की लगभग वही स्थिति थी जो मौर्यकाल में थी। पतंजलि के 'महाभाष्य' से शुंगकालीन ब्राह्मण वर्ण की विस्तृत जानकारी मिलती है। ब्राह्मण वर्ण जन्म पर आधारित था। 'महाभाष्य' के अनुसार ब्राह्मणों की जातिगत पहचान उनका गौरवर्ण होना है तथा कपिल रंग के बालों वाला एवं पिंगल रंग की आँखों वाला होना है।" ब्राह्मण वर्ण में जन्म लेने वाले व्यक्ति के लिए पतंजलि ने 'जाति ब्राह्मण' शब्द का प्रयोग किया है। ब्राह्मण कुल में जन्मा व्यक्ति विद्वान्, मूर्ख, सदाचारी अथवा कुकर्मी होने पर भी ब्राह्मण कहलाता था। ब्राह्मण वर्ण में सम्मिलित होने वाले व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह वेदाध्ययन में निपुण हो ।

क्षत्रिय एवं वैश्य अपने वर्ण के आधार पर अपने परम्परागत कार्य करते थे। क्षत्रियों को अध्ययन करना, यज्ञ करना, दान देना तथा शस्त्र धारण करना होता था। विपत्ति काल में वे वैश्यों का कार्य भी कर सकते थे। वैश्यों के कार्य थे-अध्ययन अनुसार-"ब्राह्मणों करना, यज्ञ करना, दान करना, खेती, पशुपालन तथा व्यापार-व्यवसाय करना। वैश्य वर्ण श्रेष्ठि एवं सार्थवाह में विभक्त था। शद्रो का प्रथम कर्त्तव्य तीनों उच्च वर्णों की सेवा करना था। अन्य वर्णों की अपेक्षा शूद्रों के लिए कठोर दण्ड-विधान था।

गुप्तकाल एवं गुप्तोत्तर-काल में वर्ण-व्यवस्था- मौर्योत्तर-काल में जो वर्ण-व्यवस्था प्रचलित थी वही वर्ण-व्यवस्था गुप्त तथा गुप्तोत्तर-काल में भी प्रचलित रही। समाज चार वर्णों में विभक्त रहा। गुप्तकाल में वर्ण-व्यवस्था का आधार गुण अथवा कर्म के स्थान पर जन्म हो गया था। जो मनुष्य जिस वर्ण में जन्म लेता, वह उसी वर्ण का कहलाता। उदाहरण के लिए, ब्राह्मण माता-पिता के घर जन्म लेने वाली सन्तान सदैव ब्राह्मण कहलाती। इसी प्रकार शूद्र माता-पिता के घर जन्म लेने वाली सन्तान सदैव शुद्र कहलाती। भले ही उसमें माता-पिता के वर्ण के अनुरूप गुण हों अथवा न हों। इसीलिए गुप्तकाल में कई ऐसे राजा हुए जो जन्म से क्षत्रिय नहीं, ब्राह्मण थे अत: राजकर्म करने के बाद भी उन्हें ब्राह्मणों की श्रेणी में ही गिना गया।

हर्षवर्द्धन के एक ताम्रपत्र में राजा के कर्त्तव्य का उल्लेख करते हुए उसे **'वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्तचक्र'** अर्थात् वर्ण तथा आश्रमों को व्यवस्थापित करने वाला कहा गया है। महाकवि बाणभट्ट ने अपने ग्रन्थ 'हर्षचरितम्' में राजा को वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाला निरूपित किया है।

दसवीं शती के अन्त में अलबरूनी ने अपनी भारत-यात्रा के समय भारत की सामाजिक व्यवस्था का वर्णन करते हुए वर्ण-व्यवस्था का भी वर्णन किया। अलबरूनी ने लिखा है कि-"सभी वर्गों के अपने-अपने कर्म नियत थे। राजा का यह कर्त्तव्य था कि वह किसी वर्ग को अपने कर्मों का अतिक्रमण न करने दे तथा अतिक्रमण करने वाले को दण्डित करे। "

गुप्तकाल तथा गुप्तोत्तर-काल में वर्ण का आधार कर्म के स्थान पर जन्म हो गया था। इस स्थिति में यह सम्भव नहीं था कि कोई व्यक्ति गुण अथवा कर्म के आधार पर ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय बन सके। वर्ण-व्यवस्था के विकृत रूप का दुष्प्रभाव सबसे अधिक शूद्रों पर पड़ा। शिल्पियों तथा द्विजों की स्थिति से निम्न स्थिति बाले सभी व्यक्तियों को शूद्र कहा गया। शूद्रों की आर्थिक स्थिति में यद्यपि उतार-चढ़ाव आता रहा किन्तु सामाजिक दृष्टि से वे हीन माने जाते रहे। चाण्डाल सदैव अस्पृश्य की श्रेणी में रहे। वर्णाश्रम का यही दूषित स्वरूप आज तक प्रवहमान है। वर्णाश्रम के इस विकृत रूप का दुष्परिणाम यह रहा कि इसने जाति-व्यवस्था को भी विकृत रूप में सामने लाया।

सहायक पुस्तक सूची :-

1. **पी.वी. काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास**
2. **जय शंकर मिश्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास**
3. **ओम प्रकाश : प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास**
4. **डॉ. शरद सिंह : प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास**
5. **डॉ. नवीन कुमार : प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास**
6. **डॉ. सुष्मिता पांडे : समाज, आर्थिक व्यवस्था, एवं धर्म (300-1200 इस्वी.)**